

# ‘गुरु’ ‘पूर्णिमा’ का चाँद है

ओशो ने हमारी भारतीय परंपराओं और रीति-रिवाजों पर बेहद गहन और सूक्ष्म दृष्टि से अपना विवेचन प्रस्तुत किया है। उन्होंने हमारी परंपराओं में व्याप्त विकृतियों को भी उघाड़ा है तो इन परंपराओं में छुपी गहरी अध्यात्मिकता, वैज्ञानिकता और सामाजिक उपयोगिता को भी स्थापित करने का प्रयास किया है। ओशो ने कई शब्दों और परंपराओं को एकदम नए अर्थों से परिभाषित किया है। गुरु और गुरु पूर्णिका को लेकर ओशो ने एक नई दृष्टि दी है। एक गुरु किस ऊँचाई तक जा सकता है और किस तरह कोई योग्य गुरु एक अनघड़ पत्थर जैसे शिष्य को एक सुंदर मूर्ति में बदल सकता है, ओशो ने ऐसी कई संभावनाओं के साथ गुरु की महत्ता को परिभाषित किया है, प्रस्तुत है गुरु पूर्णिमा पर ओशो के एक व्याख्यान का अंश।

धर्म जीवन को देखने का का काव्यात्मक ढंग है। सारा धर्म एक महाकाव्य है। अगर यह तुम्हें खयाल में आए, तो आषाढ़ की पूर्णिमा बड़ी अर्थपूर्ण हो जाएगी। अन्यथा आषाढ़ में पूर्णिमा दिखाई भी न पड़ेगी। बादल घिरे होंगे, आकाश खुला न होगा।

और भी प्यारी पूर्णिमाएं हैं, शरद पूर्णिमा है, उसको क्यों नहीं चुन लिया? ज्यादा ठीक होता, ज्यादा मौजूं मालूम पड़ता। नहीं, लेकिन चुनने वालों का कोई खयाल है, कोई इशारा है। वह यह है कि गुरु तो है पूर्णिमा जैसा, और शिष्य है आषाढ़ जैसा। शरद पूर्णिमा का चांद तो सुंदर होता है, क्योंकि आकाश खाली है। वहाँ शिष्य है ही नहीं, गुरु अकेला है। आषाढ़ में सुंदर हो, तभी कुछ बात है, जहाँ गुरु बादलों जैसा घिरा हो शिष्यों से।

शिष्य सब तरह के हैं, जन्मों-जन्मों के अंधेरे को लेकर आ छाए हैं। वे अंधेरे बादल हैं, आषाढ़ का मौसम हैं। उसमें भी गुरु चांद की तरह चमक सके, उस अंधेरे से घिरे वातावरण में भी रोशनी पैदा कर सके, तो ही गुरु है। इसलिए आषाढ़ की पूर्णिमा! वह गुरु की तरफ भी इशारा है और उसमें शिष्य की तरफ भी इशारा है। और स्वभावतः दोनों का मिलन जहाँ हो, वहीं कोई सार्थकता है।

ध्यान रखना, अगर तुम्हें यह समझ में आ जाए काव्य-प्रतीक, तो तुम आषाढ़ की तरह हो, अंधेरे बादल हो। न मालूम कितनी कामनाओं और वासनाओं का जल तुममें भरा है, और न मालूम कितने जन्मों-जन्मों के संस्कार लेकर तुम चल रहे हो, तुम बोझिल हो। तुम्हारे अंधेरे से घिरे हृदय में रोशनी पहुंचानी है। इसलिए पूर्णिमा की जरूरत है!

चांद जब पूरा हो जाता है, तब उसकी एक शीतलता है। चांद को ही हमने गुरु के लिए चुना है। सूरज को चुन सकते थे, ज्यादा समीचीन होता, तथ्यगत होता, क्योंकि चांद के पास अपनी रोशनी नहीं है। इसे थोड़ा समझना होगा। चांद की रोशनी उधार है। सूरज के पास अपनी रोशनी है। चांद पर तो सूरज की रोशनी का प्रतिफलन होता है। जैसे कि तुम दीये को आईने के पास रख दो, तो आईने में से भी रोशनी आने लगती है। वह दीये की रोशनी का प्रतिफलन है, वापस लौटती रोशनी है। चांद तो केवल दर्पण का काम करता है, रोशनी सूरज की है।

हमने गुरु को सूरज कहा होता, तो बात ज्यादा दिव्य और गरिमापूर्ण लगती। और सूरज के पास प्रकाश

भी विराट है। चांद के पास कोई बहुत बड़ा प्रकाश थोड़े ही है, बड़ा सीमित है। पर हमने सोचा है बहुत, सदियों तक, और तब हमने चांद को चुना है -दो कारणों से। एक, गुरु के पास भी रोशनी अपनी नहीं है, परमात्मा की है। वह केवल प्रतिफलन है। वह जो दे रहा है, अपना नहीं है, वह केवल निमित्त मात्र है, वह केवल दर्पण है।

तुम परमात्मा की तरफ सीधा नहीं देख पाते, सूरज की तरफ सीधे देखना भी बहुत मुश्किल है। प्रकाश की जगह आंखें अंधकार से भर जाएंगी। परमात्मा की तरफ भी सीधा देखना असंभव है। रोशनी ज्यादा है, बहुत ज्यादा है, तुम संभाल न पाओगे, असह्य हो जाएगी। तुम उसमें टूट जाओगे, खंडित हो जाओगे, विकसित न हो पाओगे।

इसलिए हमने सूरज की बात छोड़ दी। वह थोड़ा ज्यादा है, शिष्य की सामर्थ्य के बिल्कुल बाहर है। इसलिए हमने बीच में गुरु को लिया है।

गुरु एक दर्पण है, पकड़ता है सूरज की रोशनी और तुम्हें दे देता है। लेकिन इस देने में वह रोशनी को मधुर और सहनीय बना देता है। इस देने में रोशनी की त्वरा और तीव्रता समाप्त हो जाती है। दर्पण को पार करने में रोशनी का गुणधर्म बदल जाता है। सूरज इतना प्रखर है, चांद इतना मधुर है।

इसीलिए तो कबीर ने कहा है, गुरु गोविंद दोऊ खड़े काके लागूं पांय। किसके छुऊं पैर? वह घड़ी आ गई, जब दोनों सामने खड़े हैं। फिर कबीर ने गुरु के ही पैर छुए, क्योंकि बलिहारी गुरु आपकी, जो गोविंद दियो बताय।

(ओशो का यह व्याख्यान उनके व्याख्यानों की पुस्तक ओशो गीता दर्शन भाग-8, अध्याय 18 में विस्तार में दिया गया है।)